अंतर्राष्ट्रीय मानवीय संकट और संयुक्त राष्ट्र

डॉ बिपिन कुमार शुक्ल
वरिष्ठ प्रवक्ता राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय
तिलहर (शाहजहाँपुर)

शोध सारांश:

विगत शताब्दी के अंतिम दशकों में घटित महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय घटनाए– सोवियत संघ का विघटन,बर्लिन की दीवार का गिरना, शीत युद्ध की समाप्ति, वैश्वीकरण ,निजीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण आदि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक नवीन प्रवृत्तिया के उभार की साक्षी है । इन नवीन अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के दूरगामी प्रभाव हमें अंतर्राष्ट्रीय संबंधों एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठन के क्षेत्र में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है ।संयुक्त राष्ट्र और उसकी विभिन्न संस्थाए भी इन प्रभावों से विलग नही रह पायी। फलस्वरूप, शीत युद्धोत्तर काल में संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों में एक नवीन परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय मानवीय संकट के संदर्भ में उसके हस्तक्षेप के रूप में दिखाई पड़ा। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवीय संकट के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका एवं उसके योगदान का एक मूल्याकन करना है।

शब्द कुंजी:

मानव अधिकार, संयुक्त राष्ट्र चार्टर ,मानवीय संकट, गृह युद्ध ,नृजातीय दंगे, असफल राष्ट्र मानवाधिकार हनन ,मानवीय सहायता ,मानवीय हस्तक्षेप, मानवीय मामलो का विभाग आदि।

विषय सूची:

1– भूमिका

2– संयुक्त राष्ट्र चार्टर और मानवाधिकार

3– शीत युद्ध की समाप्ति एव नवीन प्रवृत्तियो का उभार

4–अंतर्राष्ट्रीय मानवीय संकट और संयुक्त राष्ट्र

5– समस्याए और संभावनाए

6– संदर्भ सूची

भूमिका:

शीत युद्ध की समाप्ति को अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर एक नए दौर की शुरुआत के रूप में देखा जाता है ।शीत युद्ध की समाप्ति के बाद संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्यों के मध्य सहयोग के साथ–साथ गृह युद्ध ,नृजातीय युद्ध ,राष्ट्रों का विखंडन और राज्य व्यवस्थाओं का असफल होना तथा मानवीय संकट आदि कुछ ऐसी घटनाए है जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र को इन समस्याओं के निदान हेतु आगे आने के लिए मजबूर किया, जबकि इनमें से अधिकांश समस्याए अंतरा–राज्जीय प्रकृति की समस्याए थी।

शीत युद्धोत्तर काल में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्यों के मध्य अपूर्वगामी सहयोग और निषेधाधिकार के प्रयोग में परिलक्षित कमी के चलते संयुक्त राष्ट्र एक ऐसे दौर में प्रवेश कर चुका था जहा वह 'विवादो के शांतिपूर्ण समाधान'(संयुक्त राष्ट्र चार्टर काअध्याय 6) और प्रवर्तन कार्यवाही (संयुक्त राष्ट्र का अध्याय 7) दोनों साधनो द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विवादों एवं संघर्षों के समाधान में सक्षम बन चुका था।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर और मानवाधिकार

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुए व्यापक जन संहार एवं विस्थापन ने विजित राष्ट्रों सहित विश्व समुदाय को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि आने वाली पीढ़िया ऐसे मानवीय दंश से बचाने के लिए एक ऐसे अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना अपरिहार्य है जो अंतर्राष्ट्रीयशांति एवं सुरक्षा के साथ–साथ मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अंतरराष्ट्रीय मंच के रूप में कार्य करे। उनका यह प्रयास 1945 में संयुक्त राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में आया।मानव अधिकारों से संबंधित प्रावधानोंको संयुक्त राष्ट्र चार्टर में व्यापक रूप से सम्मिलित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 1(3) में कहा गया कि संयुक्त राष्ट्र का एक उद्देश्य मानवाधिकारों तथा सभी के लिए बिना जाति, लिंग भाषा और धर्म के भेदभाव के मौलिक स्वतंत्रता को उन्नत एवं प्रोत्साहित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना है। अनुच्छेद 13(ख) संयुक्त राष्ट्र महासभा को उक्त संबंध में अध्ययन करने एवं अनुशंसा करने का दायित्व सौंपा गया। पुन: चार्टर के अनुच्छेद 55 एवं56 के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र को आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सहयोग के साथ–साथ मानवाधिकारों को बढ़ावा देने का दायित्व सौंपा गया और सदस्य राष्ट्रों से यह अपेक्षा की गई कि वे परस्पर मिलकर अथवा अलग–अलग मानवाधिकारों को बढ़ावा देने की कार्यवाही करेंगे। इसी तरह चार्टर के अनुच्छेद 62 में संयुक्त राष्ट्र सामाजिक आर्थिक परिषद से मानवाधिकारों के प्रोत्साहन हेतु एक आयोग गठित करने की सिफारिश की गई। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 76 (ग)में न्यास प्रदेशों में निवास करने वाले लोगों के मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति आस्था बढ़ाने की बात कही गई है ।इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु सक्रिय एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो अपने स्थापना काल से ही विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के साथ–साथ उनके उल्लंघन पर भी निगरानी करता रहा है।

शीत युद्ध की समाप्ति और नवीन प्रवृत्तियों का उभार

शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात वैश्विक शांति को उत्पन्न हो रहे परंपरागत खतरे की प्रकृति में एक स्पष्ट बदलाव दिखाई देता है।परंपरागत रूप में जहां दो राष्ट्रों अथवा राष्ट्र समूहों के मध्य संघर्ष (अंतर–राज्य संघर्ष)अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए खतरा था वहीं शीत युद्धोत्तर काल में अंतरा–राज्जीय समस्याए और संकट अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए खतरा बने। अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर अंतरा–राज्यीय समस्याओं के उभार के कारणों को निम्नवत रेखांकित किया जा सकता है–

- महाशक्तियों द्वारा अपने परंपरागत छोटे एवं छद्म सहयोगी राष्ट्रों से सहयोग की वापसी,
- वैश्वीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की तीव्र प्रक्रिया,
- राज्य व्यवस्थाओं का निरंतर कमजोर होना,
- राष्ट्र –राज्य व्यवस्था में हो रहा संरचनात्मक बदलाव एवं
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव सुरक्षा को लेकर बढ़ती चेतना आदि।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर उभर रही उक्त नवीन प्रवृत्तियों का प्रभाव संयुक्त राष्ट्र और उसकी कार्य पद्धति पर भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है क्योंकि गृह युद्ध ,नृजातीय दंगे, असफल राष्ट्र एवं मानवीय संकट जैसी समस्याए मौलिक रूप से यद्यपि अंतरा –राज्जीय प्रकृति की थी परंतु इन संघर्षों और विवादों से न केवल प्रभावित राष्ट्र की शांति और स्थिरता को संकटग्रस्त किया बल्कि राष्ट्रों के मध्य बढ़ती अंतर– निर्भरता एवं अंतर –नृजातीयतावाद ने पड़ोसी राष्ट्रों में अस्थिरता ,आर्थिक अव्यवस्था, पर्यावरण क्षरण और शरणार्थी समस्या को जन्म दिया । परिणाम स्वरूप इन समस्याओं के समाधान हेतु अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप की मांग उत्पन्न हुई।

जहां तक संयुक्त राष्ट्र चार्टर का संबंध है वह अनुच्छेद 2(4) के द्वारा अपने सभी सदस्य राष्ट्रों से "किसी भी राज्य की प्रादेशिक अखंडता या राजनीतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध धमकी ना देने और बल प्रयोग न करने के साथ–साथ ऐसा कोई भी काम करने का निषेध करता है जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य के परस्पर विरोधी हो।" पुन: अनुच्छेद2(7) द्वारा "संयुक्त राष्ट्र ऐसे मामलों में हस्तक्षेप का निषेध करता है जो किसी राज्य के घरेलू क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आते हों।"

परंतु उक्त प्रावधानों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र शीतयुद्धोत्तर काल में उपजे अंतरा–राज्जीय प्रकृति के विवादो एवं संकटो में हस्तक्षेप से स्वय को रोक नहीं सका। संयुक्त राष्ट्र के द्वारा इन विवादों में हस्तक्षेप के पीछे प्रमुख दो कारण रहे– प्रथम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के मानवीय संकट में सहयोग की बढ़ती भावना की स्वीकारोक्ति तथा द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय संचार माध्यमो विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम के कारण बढ़ता लोकमत प्रभाव ।

चूंकि इन जटिल समस्याओं के समाधान हेतु संयुक्त राष्ट्र की सामूहिक सुरक्षा संबंधी व्यवस्था पूर्ण रूप से अनुपयुक्त थी ,फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र ने अन्य किसी वैकल्पिक व्यवस्था के उपलब्ध न होने के कारण अपने शांति परिरक्षा रूपी साधन का प्रयोग इन जटिल समस्याओ के समाधान हेतु किया।

संयुक्त राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय मानवीय संकट

शीत युद्धोत्तर काल में अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा हेतु उत्पन्न हो रहे संकट की प्रकृति में एक व्यापक बदलाव अपघटित हुआ ।इस संकट की प्रकृति मूल रूप से अंतरा–राज्जीय थी। इस दौर में उभरे अंतर्राष्ट्रीय संकटो – असफल राज्य , विश्रंखलित राष्ट्र, गृह –युद्ध ,नृजातीय दंगे, प्राकृतिक आपदा अथवा मानव जनित आपदा में एक सामान्य बात यह थी कि इन सभी ने एक बड़े पैमाने पर मानवीय संकट को जन्म दिया। असफल होते राष्ट्रो ने शरणार्थी समस्या ,राजनीतिक अस्थिरता और गृह –युद्ध जैसी स्थितियो को जन्म दिया। गृह –युद्ध में संलग्न विभिन्न समूहो ने राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करने के लिए अथवा उस को बनाए रखने के लिए एक बड़े पैमाने पर असंवैधानिक साधनों का सहारा लिया। गृह –युद्ध में राजनीतिक पक्ष के साथ–साथ सैन्य,आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नृजातीय और अन्य विभिन्न पक्ष एक साथ कारक के रूप में काम करते है। जब कभी गृह –युद्ध में धार्मिक या नृजातीय पक्ष अधिक प्रबल हो जाते है तो ऐसी स्थिति में एक मानवीय समूह द्वारा दूसरे मानवीय समूह के नरसंहार, सामूहिक बलात्कार और जबरन खाद्य सामग्री पर नियत्रण द्वरा भूखमरी जैसी घटनाए जन्म लेती है।

गृह –युद्ध का स्वरूप अत्यंत भयावह होता है ,जहा संघर्षरत गुटो द्वारा सैनिको की अपेक्षा आम जनमानस को शिकार बनाया जाता है ।आकड़ो के मुताबिक गृह –युद्ध में होने वाली दुर्घटनाए संख्या में अंतर –राज्य युद्ध से भी अधिक प्रबल होती है जिसमें राज्य की सीमाओं के अंतर्गत होने वाले विस्थापन और संघर्षरत गुटो द्वारा नागरिको पर जानबूझकर किए जाने वाले आक्रमण और जनसंहार(हैती 1992) शामिल है। इसके अतिरिक्त 90 के दशक में रवांडा, ईस्ट तिमोर और पूर्व युगोस्लाविया में भी ये घटनाए देखी गई।

इस प्रकार शीत युद्धोत्तर काल में विश्व के विभिन्न देशों में भुखमरी, गरीबी, जनसंख्या विस्फोट, प्राकृतिक आपदा के साथ–साथ नरसंहार और नृजातीय दंगों के रूप में मानवीय संकटो का जो विस्फोट हुआ उसने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को मानवीय सहायता और मानव अधिकार संरक्षण हेतु आगे आने के लिए मजबूर कर दिया। जान एलियासन इस मानवीय विस्फोट के पीछे दो प्रमुख कारण मानते है–

प्रथम, शीत युद्ध की समाप्ति के फलस्वरुप महा शक्तियो की राजनीति के चलते सुसुप्तावस्था में रहने वालीसघर्षमय प्रवृत्तियों का पुनरोदय।

द्वितीय, राज्य –राष्ट्रो में राजनीतिक एव गैर –राजनीतिक विभाजन कारी शक्तियो का उदय।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुतायत में होने वाली माननीय संकट संबंधी घटनाओं ने संयुक्त राष्ट्र को भी इस बात के लिए मजबूर कर दिया वह इन मामलों में हस्तक्षेप करे। फलस्वरूप दिसबर 1991 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रतिवेदन 46/182 के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में मानवीय मामलो के विभाग की स्थापना की गई जहां सदस्य राष्ट्रो की सरकारो ने संकटग्रस्त लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने एवं उनके कल्याण की जिम्मेदारी स्वीकार की। यद्यपि मानवीय सहायता के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र द्वारा इस प्रकार की पहल पूर्व में कांगो शांति मिशन(1960–64) में भी की जा चुकी थी।

संयुक्त राष्ट्र द्वाराअपनी शांति परिरक्षा क्रियाविधि का प्रयोग इन जटिल परिस्थितियो वाली समस्याओं के समाधान हेतु किया जाना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि गृह युद्ध और असफल राज्य –व्यवस्था में संघर्षरत गुटो के मध्य स्वय की स्वीकार्यता बना पाना शांति परिरक्षा दलो

के लिए अत्यंत दुष्कर होता है जिसके चलते संयुक्त राष्ट्र प्राय हस्तक्षेप हेतु असमंजस की स्थिति मे रहता है। 1992 मे संयुक्त राष्ट्र के समक्ष ऐसी ही स्थिति सोमालिया और पूर्व युगोस्लाविया मे शांति परिरक्षा मिशन भेजने के समय उत्पन्न हुई जहा सयुक्त राष्ट्र ने स्वय को मानवीय सहायता तक सीमित रखते हुए अपनी शांति परिरक्षा इकाई को संकटग्रस्त क्षेत्र में भेजा।लेकिन शीघ्र ही इन शांति परिरक्षा मिशन के प्रदत्त प्राधिकार मे परिवर्तन करते हुए उक्त दोनों मिशन मे मानवीय सहायता की सुरक्षा और उसके सुरक्षित वितरण को सुनिश्चित करने एवं संयुक्त राष्ट्र मानव सहायता कार्यक्रम मे लगे हुए कर्मियो की सुरक्षा के लिए सैन्य बलो को सोमालिया और पूर्व युगोस्लाविया मे भेजा गया। ऐसा ही प्राधिकार संयुक्त राष्ट्र द्वारा कम्बोडिया, हैती, अंगोला, और बोस्निया आदि मानवीय सहायता कार्यक्रमो के संदर्भ मे किया गया।

इस बदलाव के पीछे मुख्य कारण यह था कि मानवीय सहायता हेतु भेजे जाने वाले संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन प्राय ऐसी जटिल परिस्थितियों मे फस जाते है जहा उन्हें अपने परंपरागत सिद्धातो– निष्पक्षता, विवादित पक्षो की सहमति और सैन्य हथियारो का न्यूनतम प्रयोग आदि का अक्षरश: पालन करना मुश्किल हो जाता है। गृह युद्ध की स्थिति में संघर्षरत विभिन्न पक्षो की ओर होने वाली माननीय दुर्घटनाओं मे निष्पक्ष रहते हुए समान रूप से मानवीय सहायता पहुचाने के कार्य मे प्राय संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन के सदस्यों को ही सशस्त्र संघर्षरत् गुट अपना निशाना बना लेते है । ऐसी स्थिति मे शांति परिरक्षा मिशन के सदस्यो को आत्मरक्षा के अतिरिक्त भी शस्त्रों का सहारा लेना पड जाता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय लुटेरों से मानवीय सहायता की सुरक्षा और उसके उचित वितरण को सुनिश्चित करने के हेतु भी उन्हे सैन्य रूप से सुसज्जित रहना पड़ता है। जहा तक संघर्षरत या विवादित पक्षो की सहमति का प्रश्न है इस संदर्भ मे प्राय: वास्तविक गुटो की पहचान कर उनकी सहमति प्राप्त करना अत्यंत दुष्कर होता है और यदि प्रारंभिक स्तर पर यह कर भी लिया जाता है तो उस सहमति को बनाए रखना दुष्कर होता है। इस प्रकार शीत युद्धोत्तर काल में विभिन्न क्षेत्रो मे तैनात किए गए शांति परिरक्षा दलो की परपरागत प्रकृति एवं कार्य पद्धति मे बदलाव अवश्यंभावी हो गया और संयुक्त राष्ट्र शांति परिरक्षा का विचार एक नए रूप मे हमारे सामने अस्तित्व मे आया जिसे 'द्वितीय पीढ़ी की संयुक्त राष्ट्र शांति परिरक्षा' कहा गया।

शीत युद्धोत्तर काल मे मानवीय सहायता के संदर्भ मे संयुक्त राष्ट्र द्वारा शांति परिरक्षा दलो के माध्यम से विश्व के विभिन्न समस्या ग्रसित क्षेत्रों में सराहनीय कार्य संपादित किए गये । फलस्वरूप अंतरराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को खतरा बन रहे नई प्रकृति के वैश्विक संकटों के समाधान के संदर्भ मे संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन दलो को एक नई उम्मीद की किरण के रूप मे देखा गया। अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी, एल साल्वाडोर मे गृह युद्ध की समाप्ति ,नामीबिया की स्वतंत्रता के लिए धरातल तैयार करना और कंबोडिया में सरकार की स्थापना मे किए गए सहयोग आदि घटनाक्रम संयुक्त राष्ट्र की सफलता की कहानी कहते है।

लेकिन इन समस्याओं की विशिष्ट प्रकृति से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन दलो द्वारा परंपरागत स्वरूप से हटकर की गई कार्यवाही और सोमालिया,पूर्व युगोस्लाविया, रवाडा तथा सिएरा लियोन मे स्थाई शांति को प्राप्त करने मे मिली असफलता के परिणाम स्वरूप संयुक्त राष्ट्र को आलोचना का शिकार भी होना पड़ा। 1995 मे न्यूयॉर्क टाइम्स ने लिखा –संयुक्त राष्ट्र शांति परिरक्षा को वही कार्य करने चाहिए जो वह अच्छी तरह कर सकती है। इस बात का कोई औचित्य नही है कि उसको वे कार्य करने के लिए कहा जाए जो वह नही कर सकती। इसी प्रकार एस.जे. स्टडमैन का विचार है कि "शांति परिरक्षा और गृह युद्ध में हस्तक्षेप के संदर्भ मे संयुक्त राष्ट्र दिशाहीन हो चुका है।" संयुक्त राष्ट्र की इन नवीन वैश्विक संकटो के समाधान मे भूमिका के संदर्भ मे विद्वानों के मध्य दो विचार समूह पाए जाते है प्रथम विचार समूह यह मानता है कि अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की स्थापना के दृष्टिकोण से "संयुक्त राष्ट्र शांति परिरक्षा मिशन पहले भी असफल रहे है और भविष्य मे भी असफल रहेंगे।" वही दूसरी ओर आशावादी दृष्टिकोण वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर नवीन वैश्विक संकटो के समाधान हेतु संयुक्त राष्ट्र शांति परिरक्षा के रूप मे एकमात्र विकल्प देखते है क्योकि उनका अभिमत है कि वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर इन नवीन वैश्विक संकटो के समाधान हेतु अन्य कोई तंत्र मौजूद नही है। ये आशावादी विचारक शांति परिरक्षा दलो को शांति स्थापना हेतु प्रवर्तन संबंधी कार्यवाही हेतु अधिकृत करने का समर्थन करते है। शशि थरूर विचार व्यक्त करते है कि "संयुक्त राष्ट्र शांति परिरक्षा अपने मौलिक स्वरूप से सफलतापूर्वक आगे बढ चुकी है और अब उसे पुन वापस मौलिक स्वरूप मे जाने की जरूरत नही है।"एम. डब्लू. डॉयल का अभिमत है कि "विशेष तौर पर मानवीय सहायता के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन दलों को संयमित प्रवर्तन कार्यवाही हेतु अधिकृत किया जानी उचित एवं आवश्यक है क्योकि ऐसा यदि नही किया जाता है तो या तो मिशन अधूरा रहेगा या फिर असफल।" पूर्व संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान कहते है कि सोमालिया और बोस्निया की समस्याओं ने शांति

परिरक्षा हेतु नए आयाम तय किए हैं... आज संयुक्त राष्ट्र को राजनीतिक सीमाओं का निर्धारण करने, निशस्त्रीकरण का नियमन और नियंत्रण करने तथा मानवीय सहायता को उपलब्ध कराने जैसे कार्यों का का संपादन करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में परपरागत विशेषताओं के साथ साथ संयुक्त राष्ट्र शाति मिशनों को "दांतों और हड्डियों" दोनों से मजबूत करना होगा।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र का राज्य विशेष के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप राज्य सप्रभुता का उल्लंघन माना जाता है लेकिन पूर्व महासचिव पेरेज. डी क्यीआर का अभिमत है कि राज्य के आंतरिक मामले में अहस्तक्षेप के सिद्धात को बाधा नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि इस बाधा के पीछे हम बड़े पैमाने पर हो रहे मानवाधिकारों के व्यापक एव नियोजित हनन को अनदेखा नहीं कर सकते। पूर्व महासचिव कोफी अन्नान पुन: इस बात को दोहराते है कि राज्य सप्रभुता का परपरागत विचार वर्तमान वैश्वीकरण और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के संदर्भ में पुनर्परिभाषित हो रहा है। राष्ट्र–राज्य जनता के सेवक है न कि जनता राष्ट्र–राज्य हेतु साधन. इन अपघटित हो रहे नवीन परिवर्तनों के संदर्भ में हमें संयुक्त राष्ट्र को मानव अधिकार और मानवीय सकट से जूझ रहे विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में हस्तक्षेप हेतु अधिकृत करना ही होगा। लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि मानवीय सहायता के नाम पर जानबूझकर किए जाने वाले मानवीय हस्तक्षेप से संयुक्त राष्ट्र को बचना होगा। कहने का अर्थ यह है कि संयुक्त राष्ट्र को बड़ी शक्तियों के इशारे पर काम करने के स्थान पर समस्या और संकटों का निरपेक्ष मूल्यांकन करते हुए अपने निर्णय लेने होंगे। संयुक्त राष्ट्र को 'न' कहने के अधिकार से सुसज्जित करना होगा।

संदर्भ सूची:

1– ए.के. बनर्जी: फ्रॉम पीसकीपिंग टू ब्लडलेटिंग, इंडिया क्वार्टरली,1995

2– एम.एस.राजन: यूनाइटेड नेशस सिस दी एड ऑफ कोल्ड वार, नई दिल्ली ,1996

3– एस आई रिजा: पैरामीटर्स ऑफ यूएन पीसकीपिंग ,1995

4– शशि थरूर: फिफ्टी इयर्स ऑफ पीसकीपिंग, बारबरा बेनटेन संपादित सोल्जर फॉर पीस, लंदन,1996

5– शशि थरूर: शुड यूएन गो बैक टू बेसिक्स?, सरवाइवल, 1995– 96

6– एम डब्लू डायल: कीपिंग द पीस, लंदन ,1997

7– सतीश नाबियार: दि यूएन एट50, न्यू दिल्ली ,1995

8– कोफी अन्नान: यूएन पीस ऑपरेशस एंड कोऑपरेशन विद नाटो, नोटो रिव्यू ,1993

9– बी बी घाली: एजेंडा फॉर पीस, न्यूयॉर्क, 1992

10– एस.जे. स्टेडमैन: यूएन इटरवेशन इन सिविल वार–इपरेटिव ऑफ चॉइस एड स्ट्रेटजी ,लंदन ,1995

11–जान एलियासन: चैलेन्जेज ऑफ पीस इन 21 सेन्चुअरी, स्टॉकहोम, 1997